बस!

अब बहुत हो चुका

(व्यवस्था–परिवर्तन हेतु वैचारिक शंखनाद)

लेखक

डॉ. अशोक कुमार गदिया

बी.कॉम, एफ.सी.ए., पी–एच.डी,

प्रकाशक

संस्थान

मार्ग दर्शक सामाजिक शोध संस्थान

प्रकाशकः

मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान

42, मारूति लाइफ स्टाईल कोटा रोड

रायपुर 492001

support@margdarshak.info

मो0– 7869250001

द्वितीय संस्करण : 2023

ISBN : 00000000

कम्प्यूटर ग्राफिक्स : संजय गुप्ता

मुद्रक

.....

मूल्य : 50/

Bas Ab Bahut Ho Chuka: By Ashok Kumar Gadiya

लेखक का परिचय

डॉ. अशोक कुमार गदिया

बी.कॉम., एफ.सी.ए., पी–एच.डी,

डॉ. अशोक कुमार गदिया ने वाणिज्य स्नातक की परीक्षा राजस्थान विश्वविद्यालय से वर्ष 1980 में उत्तीर्ण की। नवम्बर 1988 में आपने 'द इंस्टीटूयूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्ट्स ऑफ इण्डिया की सदस्यता प्राप्त की। वर्ष 1988 में आपने मैं अनिल अशोक एण्ड एसोसिएट्स, सी.ए.फर्म की स्थापना की, जिसके आप सक्रिश सदस्य और वरिष्ठ सहभागी हैं। आपकी कराधान के क्षेत्र में 26 वर्षों का अनुभव है। इस अनुभव को आपने अपने तक ही सीमित नहीं रखा अपितु 'कर' विषय के जिज्ञासु छात्रों का भी पथ–प्रदर्शन किया। आपको इस कार्य के लिए दिल्ली सरकार के 'बिक्री कर' विभाग की राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। कर सम्बन्धी अपने अतिविशिष्ट ज्ञान की वजह से 'कर विभाग' के क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों में आपका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। आप पिछले 20 वर्षों से कर–अधिकारियों के अनिवार्य प्रशिक्षण का कार्य भी कर रहे हैं।

डॉ. गदिया का प्रारम्भ से ही शिक्षा के क्षेत्र से अनन्य संबंध रहा है। वह इस क्षेत्र में कुछ विशेष करना चाहते है। अपने विद्यार्थी–काल से ही आप छात्र आंदोलनों के साथ जुड़े रहे। देशप्रेम के साथ–साथ शिक्षा–प्रेम भी आपकी अन्तरात्मा में रचा बसा है। शिक्षा को आप अमीर–गरीब प्रत्येक वर्ग में पहुँचाना चाहते हैं।

अपने जीवन काल में इस क्षेत्र की जो कमियाँ और परेशानियाँ आपको नजर आयीं, उनके समाधान का आपने दृढ़ता के साथ व सुनियोजित ढंग से निरन्तर प्रयास शुरू किया।

आपके हृदय में पुरातन भारतीय संस्कार कूट–कूट कर भरे है आपके तरल–सरल हृदय में भारतीय संस्कारों की पुण्य गंगा अविरल बहती है। इसी भाव–धारा से ओत–प्रोत आपका हृदय भारत की युवा पीढ़ी में उसी संस्कार के दर्शन करना चाहता है, ताकि सुनहरा तथा व्यवस्थित भारत बनें। भारत की भावी पीढ़ी विद्वता के साथ–साथ संस्कारवान बने, इसलिये आपने शिक्षा ग्रहण करने के लिये नये संस्थान स्थापित करना प्रारम्भ किया ताकि सभी युवाओं को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। आपका उद्देश्य है कि शिक्षा संस्थानों में आध्यात्म विद्या की नींव पर भारतीय शिष्टता के संस्कार, देशप्रेम, लोकसेवा, संसार के पुरातन और नूतन शास्त्र, ज्ञानविज्ञान व शिल्पकला आदि विभिन्न

विषयों की वृद्धि हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप दृढ़ता के साथ निरंतर गतिमान हैं। वर्तमान में आप भारत के विभिन्न संस्थानों के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं।

संस्थान एवं समाज की प्रगति में आप अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आपका मानना है कि देश में सामाजिक परिवर्तन एवं उत्थान तभी संभव होगा जब युवा पीढ़ी जागरूक होगी और उसकी सोच में आमूल–चूल परिवर्तन होगा। आप विद्यार्थियों में देशभक्ति की भावना के साथ–साथ भारत की शिष्टता, संस्कृति, सम्यता तथा मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। आप प्रत्येक युवा के मानस पटल पर भारतीय संस्कारों की अमिट छाप को अंकित कर देना चाहते हैं। आपके जीवन का परम लक्ष्य है कि आप युवा पीढ़ी के साथ रहकर ही कार्य करते रहें। प्रभु आपको असीम शक्ति प्रदान करें।?

आप जिन विभिन्न संस्थानों के पदेन अध्यक्ष एवं सदस्य हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं।

(1) मेवाड़ विश्वविद्यालय, चितोड़गढ़, राजस्थान — अध्यक्ष

(2) मेवाड़ इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट — अध्यक्ष
सैक्टर–4सी0, वसुन्धरा, गाजियाबाद (उ0प्र0)

(3) मेवाड़ लॉ इन्स्टीट्यूट — अध्यक्ष
सैक्टर–4सी0, वसुन्धरा, गाजियाबाद

(4) मेवाड़ गर्ल्स बिजनेस स्कूल — अध्यक्ष
सैक्टर–4सी0, वसुन्धरा, गाजियाबाद

(5) मेवाड़ कॉलेज ऑफ इन्जीनियरिंग — अध्यक्ष
गंगरार, चितौड़गढ़

(6) मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज
गांधीनगर, चितोडगढ़

(7) आर्य भट्ट कॉलेज ऑफ इन्जीनियरिंग
एण्ड टेक्नोलॉजी — सदस्य प्रबंध–मण्डल
डोला, बागपत (उ0प्र0)

डॉ. अलका अग्रवाल

निदेशिका

मेवाड़ संस्थान

वसुन्धरा, गाजियाबाद (उ0प्र0)

हमारे प्रेरणास्रोत–मार्गदर्शक

श्री बजरंग मुनि जी

यह पुस्तक परमश्रद्धेय श्री बजरंग लाल जी के सान्निध्य में रहकर, समय–समय पर उनके साथ परस्पर वार्तालाप एवं व्यक्तिगत सोच का प्रतिफल है। पुस्तक के प्रारम्भ में भी मुनि जी का परिचय कराना मैं अपना नैतिक एवं सामाजिक दायित्व समझता हूँ।

इस संक्रमण काल में व्यवस्था–परिवर्तन आन्दोलन के जनक एवं प्रेरणास्रोत श्री बजरंग मुनि जी ही हैं। हम उनके द्वारा प्रणीत विचारों की पुनरावृत्ति ही नहीं उनके द्वारा दिखाए गये मार्ग पर चलने का प्रयास भी कर रहे हैं।

परिचय (प्रेरणास्रोत)

श्री बजरंग लाल अग्रवाल सम्प्रति श्री बजरंग मुनि जी का जन्म रामानुजगंज जिला–सरगुजा (छत्तीसगढ) में हुआ था। आप प्रारम्भ से ही स्वामी दयानन्द के सामाजिक आन्दोलन से अत्यधिक प्रभावित हुए और युवाअवस्था में डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक चिन्तन से आन्दोलित हुए। आपकी राजनीतिक एवं सामाजिक यात्रा भारतीय जनसंघ व भारतीय जनता पार्टी (अध्यक्ष) के कार्यकर्ता के रूप में प्रारम्भ हुई। आपने भारतीय जनसंघ और भाजपा के उच्च पदों को सुशोभित किया। इन्हीं दलों के माध्यम से सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के समाधान हेतु निःस्वार्थ प्रयत्न किये, किन्तु दलगत राजनीति की विवशताओं में आपने अपने मौलिक चिन्तन को आकार देने के कठिनाइयों का अनुभव किया। इससे आहत हो आपने वर्ष 1984 में दलगत राजनीति से विदा ले ली। वर्ष 1999 तक अपने मौलिक चिन्तन की मूर्तरूप प्रदान करने हेतु आपने एकान्त प्रवास किया। वहीं बैठकर सामाजिक–राजनीतिक विषयों पर गहन चिन्तन, मनन एवं अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। आपने वहीं पर भारतीय संविधान का गहन अध्ययन किया। जहाँ संविधान लोक स्वराज्य के मापदण्ड पर खरा उतरता प्रतीत नहीं हो रहा था वहाँ भारतीय संविधान को संशोधित करने की दृष्टि प्रदान की। आपने संविधान का एक संशोधित प्रारूप तैयार किया। प्रस्तुत प्रारूप में श्री मुनि जी ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था की ज्वलंत समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किये।

आप पन्द्रह वर्षों के गहन चिन्तन के बाद जब अपने शहर लौटे तो रामानुजगंज के जनमानस ने आपको वहाँ की नगर पंचायत का अध्यक्ष चुना। श्री मुनि जी ने अध्यक्ष के रूप में लोक स्वराज्य प्रणाली का सफल प्रयोग किया। इससे आप बहुत ही लोकप्रिय हुए। इस अध्ययन एवं सफल प्रयोग से आपको व्यवस्था–परिवर्तन अभियान को सम्पूर्ण देश में फैलाने की प्रेरणा मिली।

आपने अपने विचार को तेज धार प्रदान करने कि लिए वर्ष 2005 से राजधानी दिल्ली को मुख्य केन्द्र बनाया है। यहाँ पर प्रवास के दौरान विभिन्न राजनीतिक एवं समाजिक चिन्तन के पुरोधाओं से सम्पर्क स्थापित किया। आपने विचार मंथन करने जो निष्कर्ष निकाले हैं, इन्हें कार्यान्वित करने के लिए आप निरंतर प्रयासरत हैं। इस कार्य के लिए आप श्री ठाकुर दास बंग, श्री गोविन्दाचार्य, श्री राज सिंह, श्री रामबहादुर राय, श्री रणवीर शर्मा आदि के निरन्तर सम्पर्क में है।

मैं अनुभव करता हूँ कि श्री बजरंग मुनि जी सामाजिक–राजनीतिक विषयों पर विचार मंथन करने वाले महान चिन्तक हैं। श्री मुनि जी ने वर्तमान में समाज और राज्य के अधिकारों की मर्यादित सीमाएँ सुनिश्चित की हैं। राज्य के लिए आपका निर्देश है कि वह सिर्फ न्याय और सुरक्षा प्रदान करें बाकी अपने कल्याण की समस्त योजनाओं की रूपरेखा समाज स्वयं तैयार करेगा।

श्री मुनि जी एक महान चिन्तक हैं। उनका मार्गदर्शन हमें सदा मिलता रहे, यही कामना है। बजरंग मुनि जी से पत्र व्यवहार इस पते पर किया जा सकता हैः

आपका अनन्य

डॉ. अशोक कुमार गदिया

वर्तमान लोक नियुक्त तंत्र में

न कोई लोक है

न कोई तंत्र है

यह आम आदमी के खिलाफ।

विशेष आदमी का खुला षड्यंत्र है

आइये हम–आप मिलकर

लोक नियंत्रित तंत्र की ओर चलें

बस अब बहुत हो चुका

सदियों तक भारत विदेशी शक्तियों का गुलाम रहा, कभी मुसलमानो का तो कभी अंग्रेजों का। गुलामी की बेड़ियों को काटने के लिए अनेक स्वतंत्रता सेनानियों ने जनता के समर्थन से अथक संघर्ष किया। जिसका परिणाम हुआ कि विदेशी शक्तियां 1947 में भारत छोड़कर चली गयीं और हम स्वतंत्रता की सुनहरी सुबह देख सके।

क्रांतिकारी देशभक्तों के बलिदानों को योजनाबद्ध तरीके से किनारे किया जा चुका था, किन्तु स्वतंत्रता की आहट से नेहरू के नेतृत्व में राजनेताओं द्वारा गांधी जी को भी दर किनार करने की कोशिश शुरू कर दी गई। इन नेताओं में आपसी संघर्ष सत्ता के लिए चाहे कितना भी रहा किन्तु इस बात पर सब एकजुट रहे कि गांधी जी को तथा उनके सिद्धांतों को कैसे किनारे किया जाये? स्वतंत्रता के समय तथा गांधी जी के जीवन काल में उनसे सलाह लेना एक मजबूरी थी, किन्तु अधिकांश निर्णय नेता स्वयं ही करते थे।

स्वतंत्र भारत में गांधी जी समाज द्वारा संचालित व्यवस्था चाहते थे और सत्ता की भूमिका सिर्फ सहायक के रूप में सीमित रखना चाहते थे। लेकिन राजनीतिज्ञ सत्ता की व्यवस्था को मजबूत करना चाहते थे और समाज की व्यवस्था को गौण। गांधी जी इस व्यवस्था से क्षुब्ध हुए तो उन्होंने नेहरू जी तथा बिरला जी को बुलाकर कहा कि लगता है कि अगली लड़ाई मुझे अपनी सरकार के विरूद्ध ही लड़नी पड़ेगी। लेकिन नेहरू जी ने उस महापुरूष की चेतावनी को जरा भी गम्भीरता से नहीं लिया। नेहरू जी के नेतृत्व में तत्कालीन राजनेता सत्ता को अधिकाधिक अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए सूत्रबद्ध थे। नेहरूवादियों ने भारतीय संविधान का एक ऐसा प्रारूप बनाया जिसमें शासक व्यवस्थापक की भूमिका में स्थापित हो और समाज एवं लोकशक्ति उसमें सिर्फ सहायक की भूमिका अदा करे। स्वाधीन भारतीय संविधान का मूल्य ढांचा यानी तीन चौथाई हिस्सा वर्ष 1935 के ब्रिटिश सरकार से भेजे गये अधिनियम से लिया गया था। यही नही शेष हिस्से में भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था का कुछ भी ग्रहण नहीं किया गया बल्कि कुछ पाश्चात्य देशों के संविधान की आधी अधूरी नकल की गई थी। जब भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार हुआ, और उसकी प्रतियाँ संविधान सभा के सदस्यों को विचारार्थ दी गई, तो उस समय गांधी के सिद्धांतों में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों ने संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ0 राजेन्द्र बाबू के समक्ष कहा कि इस संविधान में गांधी के सिद्धांतों को नजर अन्दाज किया गया है। इस लिए उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए संविधान में 'नीति निर्देशक सिद्धांतो' का प्रावधान कर दिया गया जिसमें वह सभी बातें सम्मिलित की गई जिन्हें शासन नहीं करना चाहता था।

1948 में गांधी जी की हत्या के बाद तो समाज का एक प्रबल पक्षधर समाप्त हो गया। कोई मजबूत व्यक्ति नहीं बचा जो लोकशक्ति की बात को पूरी ताकत के साथ उठा सके। इसका परिणाम हुआ कि भारत की सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था नेहरू मॉडल पर निर्बाध तेज गति से दौड़ने लगी।

महात्मा गांधी अपने जीवनकाल से ही शासनमुक्त समाज और शोषणमुक्त प्रशासन के प्रबल पक्षधर थे। किन्तु श्री नेहरू के नेतृत्व में जिन राजनेताओं ने नेहरू मॉडल तैयार किया वे सिर्फ शोषणमुक्ति की बात करते थे। इस गुट ने शोषणमुक्ति शब्द का उपयोग इस प्रकार किया कि इस शब्द ने शासन को समाज में हस्तक्षेप करने के अनियंत्रित द्वार खोल दिये। गांधी जी की विचारधारा थी कि शासनमुक्त समाज शोषणमुक्ति की दिशा में चले किन्तु तत्कालीन शासकों ने शासनमुक्ति की दिशा में तो कोई कदम नहीं बढ़ाया इसके विपरीत शोषणमुक्ति के नाम पर समाज को अनेक वर्गो में विभाजित कर समाज में हस्तक्षेप के अनगिनत द्वार खोल दिये। महात्माजी ने कभी सोचा भी न होगा कि उनके द्वारा बनाये गये सिद्धांतों की हत्या स्वयं उनके ही अनुयायी करेंगे। शोषणमुक्ति शब्द को ही अस्त्र बनाकर शासनमुक्ति के विचार की हत्या कर दी जायेगी। गांधी जी ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता को कभी अन्तिम नहीं कहा। उन्होंने घोषणा की थी कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता हमारा प्रथम चरण मात्र है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद द्वितीय चरण में राजनेताओं ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए स्वतंत्रता को ही स्वराज्य प्राप्ति का अंतिम पड़ाव घोषित करके ग्राम स्वराज्य की परिभाषा ही बदल दी। लोक स्वराज्य को सुराज्य शब्द में परिवर्तित करके स्थापित कर दिया गया।

स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधी जी के साथ संघर्ष कर रहे संगठनों में एक समूह राजनेताओं का था तथा दूसरा सर्वोदय विचार वालों का। आर्य समाज जैसा राष्ट्रवादी संगठन भी इस आन्दोलन में पूर्ण रूप से सक्रिय था, जिसमें कुछ लोग गांधी के नेतृत्व में विश्वास करते थे। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा जैसे प्रखर राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों के साथ मिलकर स्वतंत्रता की राह विकसित कर रहे थे। आर0एस0एस0 के कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से इस संघर्ष में शामिल थे। उस समय संघ की भूमिका सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू जागरण तक ही सीमित थी। साम्यवादियों के किसी भी पक्ष की इस संघर्ष में कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी। लेकिन स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात सम्पूर्ण परिदृश्य ही बदल गया। आर्य समाज सक्रिय राजनीति से विलग हो पुनः अपने सास्कृतिक स्वरूप की ओर लौट गया। आर्य समाज जैसे प्रखर राष्ट्रवादी संगठन का राजनीति में अविश्वास अप्रत्याशित था। जिस आर्यसमाज को राजनीति में रहकर सक्रिय भूमिका का निर्वहन करना चाहिए था वह अंकुश लगाने का काम भी नहीं कर सका, जो राष्ट्र के लिए हितकर नहीं था। इसी प्रकार सर्वोदय प्रवृत्ति वाले भी किंकर्तव्य–विमूढ़ नजर आये। गांधी जी ने सदा सर्वोदय विचार वालों का मार्गदर्शन किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के शीघ्र बाद ही महात्मा गांधी को राजनेताओं की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं का अनुमान हो गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि कांग्रेस को भंग कर दो शासन में गॉवों को महत्वपूर्ण भूमिका दो, और कांग्रेस कार्यकर्ता गांवों में जाकर लोगों का मार्गदर्शन करें। राजनीतिज्ञों ने महात्मा के सन्देशों के दो प्रथम सूत्र तो भूला दिये और तीसरे सूत्र की व्याख्या की, कि गांधी जी ने गॉवों को

स्वावलम्बी और आदर्श गाँव बनाने के निर्देश दिये। इन नेताओं ने गांधीवादियों को राजनीति से बहुत दूर रखने के लिये भरपूर सरकारी सहायता दी और बेचारे भोले भाले गांधीवादी सरकारी अनुदानों का गट्ठर पीठ पर लाद कर ग्राम निर्माण की दिशा में निकल पड़े। इस तरह आर्य समाज और गांधीवादियों की शराफत ने सत्ता लोलुपों को यह खुली छूट दे दी कि वे समाज के साथ जैसा चाहें वैसा व्यवहार करें।

राजनेताओं ने सुरक्षा और न्याय की जगह आर्थिक और भौतिक विकास को प्राथमिकता दी क्योंकि समाज को गुलाम बनाकर रखने के बाद भी संतुष्ट रखने का यही एक मात्र मार्ग था। इसके लिये सविधान की मूल अवधारण को ही सुरक्षा और न्याय की जगह पर जनकल्याणकारी राज्य के रूप में बदल दिया गया। जब संविधान की मूल अवधारणा ही बदल गई तो संविधान का बाकी स्वरूप तो उसी पर निर्भर था। नेहरू जी ने पहले आम चुनाव की एक सभा में जनता से मांग की थी कि तुम मुझे वोट दो मैं तुम्हें सुराज्य दूंगा। आडवाणी जी तो आज तक कहते हैं कि अब हम स्वराज को सुराज्य में बदल देंगे। साम्यवाद का तो राजनैतिक दर्शन ही सुराज्य हैं, जिसमें स्वराज्य दूर–दूर तक नहीं दिखता। इस तरह भारत के सभी राजनेता इस दिशा में एक मत थे कि शासन के अधिकार, दायित्व और समाज में हस्तक्षेप न्यूनतम होने का यह सिद्धांत बिल्कुल गलत है, अनावश्यक है और त्याज्य है। परिणाम स्वरूप भारत स्वतंत्रता के बाद ही लगातार नेहरू मॉडल की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था की ओर चला जिसका एक संभावित बाधक आर्य समाज स्वतः दूर हो गया था, गांधीवादियों को जबरन दूर कर दिया गया और सर्वोदय को समझा–बुझाकर गांवों की ओर भेज दिया गया। संघ और साम्यवादियों को राजनैतिक उठा–पटक के खेल में शामिल कर लिया गया।

भारत साठ वर्षो से इस एक दिशा में आगे बढ़ रहा है। सभी राजनैतिक दल लक्ष्य के प्रति पूरी तरह एकजुट हैं, मार्ग चाहे व्यक्तिगत रूप से कितने ही टकरा रहे हों। साठ वर्षो से भारत ने राष्ट्र के रूप में तीव्र प्रगति की है। सन् 1990 के बाद तो प्रगति की रफ्तार और भी तेज हो गई है। सड़क, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाह्य सुरक्षा, अणु शक्ति, वैज्ञानिक अनुसंधान, राष्ट्रीय विकास दर आदि सभी मामलों में भारत इतनी प्रगति कर रहा है कि अब भारत विकासशील की जगह विकसित राष्ट्र की श्रेणी में आने की तैयारी कर रहा है। आम लोगों के जीवनस्तर में सुधार हुआ है। भौतिक विकास की रफ्तार सफलतापूर्वक व संतोषजनक ढंग से आगे बढ़ रही है। किन्तु समाज लगातार पीछे जा रहा है।

सामाजिक विकास की बाधाएं

सामाजिक विकास हेतु ग्यारह समस्याओं पर नियंत्रण आवश्यक है जो विकास का मापदंड मानी जाती हैं। इन समस्याओं पर दृष्टिपात करें तो वे निम्न हैं – 1. चोरी, डकैती, लूट 2. बलात्कार 3. मिलावट और कमतौल 4. जालसाजी और धोखाधड़ी 5. हिंसा, बलप्रयोग, आतंकवाद 6. भ्रष्टाचार 7. चरित्रपतन 8. जातीय टकराव 9. साम्प्रदायिकता 10. आर्थिक असमानता 11. श्रम शोषण। इन ग्यारह समस्याओं की हम समीक्षा करें।

चोरी, डकैती, लूटः भारत में इन वारदातों में लगातार वृद्धि हो रही है। समाचार पत्र ऐसे समाचारों से भरे रहते है अपराधी नित नए–नए हथकंडे अपना लोगों को लूट रहे है।

बलात्कारः बलात्कार की घटनाएँ निरन्तर बढ़ रही है। राजधानी दिल्ली जैसे नगरों में खूब प्रचारित करने और अत्यन्त कठोर कानून बनाने के बाद भी बलात्कार की घटनाएं विभत्सतम् स्वरूप में मानवता को शर्मसार कर रही है।

मिलावट और कमतौल : अब भारत में कोई वस्तु शुद्ध है इस बात के लिये विश्वास का कोई आधार नहीं है। दवा तक में धडल्ले से मिलावट जारी है। खेती की खाद व खाद्य पदार्थ भी अछूते नहीं रहें। इसके गंभीर प्रकरण नित सामने आ रहे है।

जालसाजी और धोखा :– इसका भी ग्राफ लगातार ऊपर की ओर जा रहा है, प्रतिवर्ष जालसाजी के पुराने कीर्तिमान टूट रहे हैं और नये बन रहे हैं। अब तो नकली रेल टिकट और जाली स्टाम्प तक मिलने लगे हैं। जाली डिग्री से डाक्टर बनने तक की घटनाएं प्रकाश में आ रही है।

हिंसा और आतंक : स्वतंत्रता के पूर्व गांधी जी ने आश्वासन दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र भारत में भयमुक्त होगा। स्वतंत्र भारत में क्या ऐसा हुआ? सारे गुण्डे और अपराधी तो भयमुक्त हो गये और सभी शरीफ लोग पुलिस से भी भयग्रस्त हैं और गुण्डों से भी। कानून का पालन करने वालों का मनोबल लगातार गिर रहा है और कानून तोड़ने वालों का बढ़ रहा है। सम्पूर्ण समाज में हिंसा के प्रति विश्वास बढ़ रहा है। आम आदमी का कानून और न्याय से विश्वास उठता जा रहा है और अपराधियों का कानून और न्याय पर विश्वास बढ़ता जा रहा है। उत्तर प्रदेश और बिहार में 'अपहरण और फिरौती' एक उद्योग के रूप में लगातार बढ़ रहे हैं। देश के अन्य भागों में भी यह उद्योग पांव पसारने लगा है। भारत के सीमावर्ती भाग विदेशी आतंकियों के निशाने पर है। कुछ प्रदेश नक्सलवादी आतंक की चपेट में हैं और शेष कुछ आपराधिक आतंकवाद से पीड़ित हैं। भारत का कोई भी ऐसा भाग नहीं जो किसी न किसी प्रकार के आतंक से प्रभावित न हो।

भ्रष्टाचार : भ्रष्टाचार भारत में लगातार तीव्रगति से बढ़ रहा है। राजनैतिक और प्रशासनिक क्षेत्र तो पूरी तरह भ्रष्टाचार की चपेट में है ही, न्यायिक परिदृश्य भी अब भ्रष्टाचार के मामले में उतना विश्वसनीय नहीं रहा। अब तो धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं में भी भ्रष्टाचार लगातार बढने की दिशा में है।

चरित्र पतन : राजनीति में तो नैतिकता और चरित्र की कोई मात्रा रही ही नहीं, किन्तु समाज का भी लगातार चरित्र पतन हो रहा है। नैतिकता को आदर्श मानने वालों की संख्या भी घट रही है और उनमें नैतिकता की मात्रा भी। एक भी ऐसी राजनैतिक, धार्मिक या सामाजिक संस्था नहीं है जिसके औसत चरित्र में गिरावट न आई हो। चरित्र पतन का यह सिलसिला आज भी उसी गति से जारी है जैसी गति कुछ समय पूर्व थी। संभव है कि अब चरित्र पतन की गति बढ़ी ही है घटी तो बिल्कुल नहीं है।

साम्प्रदायिकता : स्वतंत्रता के समय हमने भारत का विभाजन इस मजबूरी में स्वीकार किया था कि साम्प्रदायिक टकराव से बचने का कोई अन्य मार्ग नही था। हमने भारत का विभाजन भी स्वीकार कर लिया और साम्प्रदायिकता भी जीवित रह गई। अब पुनः उसी धार्मिक आधार पर विशेष अधिकार और आरक्षण की आवाज स्पष्ट सुनाई देने लगी है। जो लोग सन् 1947 के विभाजन के समय सबके साथ भाई–भाई के रूप में समान स्तर पर रहने की घोषणा कर चुके थे अब वहीं लोग पाला बदलकर स्वयं को अल्पसंख्यक कहने लगे हैं। डर लगता हैं कि कहीं भारत एक नये साम्प्रदायिक विभाजन की ओर न बढ़ जायें।

जातिय टकरावः स्वतंत्रता के समय हमने माना था कि समाज में छुआछूत समाप्त होने से तथा जातिप्रथा कमजोर होने से जातीय टकराव समाप्त हो जायेगा... किन्तु हुआ क्या? छुआछूत नाम मात्र की बची है। जातिप्रथा भी दम तोड़ रही है किन्तु जातिवाद भी बढ़ रहा है और जातीय टकराव भी। जातिवाद और जातीय टकराव क्यों बढ़ रहा है यह अलग शोध का विषय है, किन्तु जातिवाद और जातीय टकराव बढ़ रहा है यह निर्विवाद है।

आर्थिक असमानता : स्वतंत्रता के पूर्व बहुत बढ़चढ़ कर दावे किये गये थे कि भारत में आर्थिक मामलों में न्यूनतम और अधिकतम के बीच की दूरी लगातार कम होती जायेगी। किन्तु स्वतंत्रता के बाद लगातार यह दूरी बढ़ती गई और बढ़ती जा रही है। हम साठ वर्षो के स्वतंत्रता के काल के बाद भी गरीबी रेखा के उस समय के मापदंड इक्कीस सौ कैलोरी भोजन प्रति व्यक्ति प्रतिदिन अर्थात् वर्तमान में चौदह रूपये प्रतिदिन से सबकों ऊपर नहीं उठा पाये हैं। किन्तु आज भी सरकारी रिकार्ड में ऐसे लोगों की वर्तमान संख्या करीब 20 प्रतिशत है। यह तो विडम्बना ही है कि भारत में चौदह रूपये से ऊपर वाले की गिनती गरीबों में नहीं है। भारत की वर्तमान विकास दर करीब नौ प्रतिशत है इसका विभाजन इस प्रकार है कि तैतीस प्रतिशत गरीब वर्ग की औसत आर्थिक विकास दर एक प्रतिशत, 33 प्रतिशत मध्यम लोगों की नौ प्रतिशत और 33 प्रतिशत सम्पन्न वर्ग की विकास दर 17 प्रतिशत है और सबका औसत नौ प्रतिशत भारत की

विकास दर है। यह विकास दर ही स्वतः प्रमाण है कि आर्थिक असमानता लगातार बढ़ती जा रही है, अर्थात् गरीब चींटी की चाल से आगे बढ़ रहा है तथा अमीर हवाई जहाज की गति से।

श्रम शोषण : स्वतंत्रता के पूर्व हमने बढ़–चढ़कर घोषणा की थी कि भारत में श्रम को उचित सम्मान भी मिलेगा और न्याय भी। न कोई बेरोजगार रहेगा न उपेक्षित। किन्तु हुआ क्या? श्रम तो बेचारा स्वतंत्र भारत में भी ठगा का ठगा रह गया। स्वतंत्रता के पूर्व पूंजीपति ही श्रम शोषण करते थे किन्तु इस दौर में बुद्धिजीवी भी शामिल हो गये हैं। श्रमिक बेरोजगारी लगातार बढ़ती जा रही है। 100 रूपये प्रतिदिन में भी काम की कोई गारन्टी नहीं है।

सामान्य सी धारणा है कि ग्यारह समस्याओं में से कोई एक समस्या भी यदि बढ़ रही हो या अनियंत्रित हो जावे तो समाज के लिये एक बड़े संकट का रूप बन सकता है। किन्तु भारत में तो सभी ग्यारह की ग्यारह समस्याएं साठ वर्षो से लगातार बढ़ रही है और निकट भविष्य में भी इनके समाधान के कोई लक्षण नहीं है। क्योंकि भारत में एक भी राजनैतिक दल ऐसा नहीं है जिसके पास इन ग्यारह समस्याओं में से किसी एक भी समस्या के समाधान की योजना या इच्छा शक्ति हो। सभी राजनैतिक दल ग्यारह समस्याओं की अपेक्षा राष्ट्रीय भौतिक विकास की नई–नई योजनाएं बनाना मात्र ही अपना दायित्व समझकर उसमें दिन–रात लगे रहते है।

राजनीति के दस नाटक

लोकतंत्र का एक सामान्य सा सिद्धांत है कि जो प्रशासन समाज की मौलिक समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है, वह समाज में अपनी लोकप्रियता बनाये रखने के लिये दस प्रकार के नाटक करता हैः–

1. **समाज में आठ आधारों पर वर्ग विभाजन करके वर्ग विद्वेष फैलाना और उसे वर्ग संघर्ष तक ले जानाः–** ये आठ राजनैतिक आधार हैं (क) धर्म (ख) जाति (ग) भाषा (घ) क्षेत्रीयता (ङ) उम्र (च) लिंग (छ) गरीब –अमीर (ज) उत्पादक– उपभोक्ता। भारत के सभी राजनैतिक दल आठों आधारों पर वर्ग संघर्ष के प्रयत्नों में पूरी ईमानदारी से सक्रिय हैं। सभी दल पूरी तन्मयता से इस प्रयत्न में लगे हैं। सात आधार तो ऐसे थे जिनसे गांव टूटे, समाज टूटा किन्तु परिवार नहीं टूटे थे। लिंग भेद ने तो परिवारों की एकता को ही छिन्न भिन्न करना शुरू कर दिया है। पुरूष शोषक है और महिला शोषित इस अर्धसत्य ने परिवारों में वर्ग निर्माण तो शुरू कर ही दिया है, वर्ग संघर्ष भी होना शुरू हो जायेगा। कल्पना कीजिये कि यदि पति–पत्नि के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी हुई तो भविष्य में कैसे बच्चे पैदा होंगे ? कैसे उनका पालन–पोषण होगा और कैसे उनके संस्कार होंगे ? किन्तु हमारे देश के राजनेताओं को समाज के लाभ–हानि के आंकलन से कोई मतलब नहीं। उन्हें तो अपने लाभ के लिये महिलाओं को वर्ग के रूप में खड़ा करना है जिसमें वे सफल हो रहे है।

2. **समस्याओं का ऐसा समाधान खोजना कि उस समाधान से ही एक नई समस्या पैदा होती होः–** हमारे देश के सभी राजनैतिक दल पूरी सक्रियता से यह कार्य किया करते हैं। भारत की अधिकांश समस्याएं इनके प्रयत्नों की By Product अपशिष्ट पदार्थ हैं।

3. **समस्या की प्रवृत्ति के विपरीत समाधान की प्रकृति :** आर्थिक समस्याओं का आर्थिक, प्रशासनिक समस्याओं का प्रशासनिक और सामाजिक समस्याओं का सामाजिक समाधान ही खोजा जाना चाहिए। किन्तु भारत में आर्थिक समस्याओं का प्रशासनिक व सामाजिक, सामाजिक समस्याओं का आर्थिक व प्रशासनिक और प्रशासनिक समस्याओं का आर्थिक व सामाजिक समाधान खोजने का एक प्रचलन सा चल पड़ा है। डाकुओं और हत्यारों के हृदय परिवर्तन की बात की जाती है जबकि दहेज, नशा, छुआ–छूत जैसे कार्यो के लिये कानून बनाने की बात की जाती है। मूल्य वृद्धि को रोकने के लिये भी कठोर कानून की वकालत करने वाले बहुत लोग मिलते हैं। कुछ लोग तो ऐसे भी मिलते हैं जो चोरी, डकैती को मजबूरी बताते हैं और ब्लैक मार्केटिंग को अपराध। जबकि पूरा देश जानता है, कि चोरी, डकैती, बलात्कार, मिलावट, हिंसा आदि अपराध है, दहेज, छुआछूत जातिप्रथा महिला उत्पीड़न सामाजिक समस्या और वेश्यावृत्ति, ब्लैक मार्केटिंग, बालश्रम आदि आर्थिक समस्याएं है।

4. **राष्ट्र शब्द को ऊपर उठाकर समाज शब्द को नीचे गिराना :** पूरे भारत में निरंतर यह बात समझाई जा रही है कि राष्ट्र समाज से बड़ा है। राष्ट्र किसी निश्चित भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ भू–भाग होता है किन्तु समाज की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती है। पाकिस्तान और अमेरिका का रहने वाला समाज का अंग तो होता है किन्तु राष्ट्र का नहीं। स्पष्ट है कि समाज राष्ट्र से बड़ा होता है। भारतीय, पाकिस्तानी, हिन्दू, मुसलमान को बदल कर निरंतर संकुचित करने के प्रयत्न जारी है। अनेक पढ़े–लिखें लोग भी व्यक्ति और नागरिक शब्द का अंतर नहीं समझते है। जबकि व्यक्ति समाज का अंग होता है और नागरिक राष्ट्र का।

5. **वैचारिक मुद्दों पर बहस को पीछे करके भावनात्मक मुद्दों को आगे लाना :** भारत का हर राजनैतिक दल लगातार यह प्रयत्न करता है कि समाज में भावनात्मक मुद्दों पर बहस आगे रहे और वैचारिक मुद्दे पीछे छूट जायें। भारत के भाग्य विधाता जिस संसद में बैठकर भारत की समस्याओं के समाधान पर विचार मंथन करते हैं उसका स्वरूप भी भावनात्मक ही अधिक होता है। संसद में भाषा और वाक्युद्ध से यह बात और स्पष्ट होती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत में प्याज या मंदिर जैसे भावनात्मक मुद्दों पर राष्ट्रीय चुनाव तक जीतने के सफल प्रयास भी हो चुके हैं। किसी नेता की मृत्यु या जेल जाते ही उसकी गृहिणी को उसके पद पर स्थापित करने के प्रयत्न तो अब प्रथा के रूप में शामिल हो चुके हैं। भारत में कुछ ऐसा वातावरण बना दिया गया है कि यदि कोई राजनेता या दल वैचारिक मुद्दे को आगे करने की कोशिश भी करे तो वह पूरी तरह असफल हो जाता है।

6. **समाज को शासक और शासित में बांटकर दोनों के मनोबल में फक्र करने का संगठित प्रयास :** इसके लिये समाज के आम लोगों को लगातार अशिक्षित और अयोग्य बता–बताकर उनके मनोबल इस तरह तोड़ा जाता है कि आदमी स्वयं को कमजोर समझने लगता है। इधर समाज के लोगों का तो मनोबल तोड़ा जाता है और राजनेताओं का मनोबल बढ़ाया जाता है। समाज की विभिन्न इकाइयों को या तो किसी छोटे से छोटे मामले में भी निर्णय नहीं करने दिया जाता या उनके ऐसे किये गये निर्णय को हानिकारक सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। नमक कौन सा खाना है या विवाह की उम्र क्या हो, ऐसे नितान्त व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों में भी निर्णय का अधिकार शासन ने अपने पास रख लिया है। परिणाम स्वरूप आम नागरिक की चिन्तन शक्ति निरंतर घटती जा रही है और वह पूरी तरह शासन पर निर्भर होता जा रहा है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि भारत का औसत नागरिक नितान्त पारिवारिक या स्थानीय मामलों में भी निर्णय की क्षमता नहीं रखता है तो उन्हीं के बीच का तथा उन्हीं के समान औसत योग्यता का व्यक्ति सम्पूर्ण भारत के लिए नियम कानून बनाने की योग्यता कहां से प्राप्त कर लेता है? उसमें अन्य लोगों से अधिक योग्यता का मापदंड क्या है? संसद का चुनाव जीतते ही वह सामान्य व्यक्ति भी इतना महत्वपूर्ण कैसे हो जाता है? यह एक ज्वलंत प्रश्न है।

7. समाज द्वारा स्वयं को अपराधी मानने की भावना का विकास : इसके लिये इतने अधिक कानून बनाये जाते हैं कि समाज का कोई भी व्यक्ति उन कानूनों का ठीक से पालन ही नहीं कर पाता। गैर कानूनी कार्यो को समाज में अपराध के रूप में प्रचारित कर देने से अपराध और गैरकानूनी का भेद मिट जाता है और हर गैरकानूनी कार्य करने वाला स्वयं को अपराधी मानने लगता है। शासन से जुड़े लोग तो समाज के लोगों को दोषी बताते ही है, कुछ धार्मिक लोग भी हमेशा हमें ही अपराधी बताकर हमारा मनोबल तोड़तें रहते हैं। कुछ धार्मिक संस्थाएं तो 'हम सुधरेंगे–जग सुधरेगा' को नारा के रूप में ही प्रचारित करती रहती हैं। इस प्रचार से वास्तविक अपराधियों को राहत मिलती है ओर समाज का मनोबल टूटता है। भारत में कुल मिलाकर जितने कानूनों की आवश्यकता है उससे पचास गुना अधिक कानून हैं। ऐसे कानूनों की संख्या लगातार बढ़ाई जा रही है।

8. शासन की भूमिका बिल्लियों के बीच बंदर के समान : बिल्लियों के बीच बिना परिश्रम रोटी खाने वाले बंदर की तीन प्रकार की भूमिकाएं हुआ करती हैं: (क) बिल्लियों की रोटी कभी बराबर न हो (ख) बंदर हमेशा रोटी बराबर करता हुआ दिखे किन्तु करे कभी नहीं और (ग) छोटी रोटी वाली बिल्ली के मन में असंतोष की ज्वाला लगातार धधकती रहे। भारत में सभी राजनैतिक दल पूरी ईमानदारी से तीनों काम कर रहे हैं। आर्थिक असमानता दूर करने में पिछले साठ वर्षो से सभी दल लगातार प्रयत्नशील हैं। कई दल तो चुनावों में 'गरीबी हटाओं' जैसा चुनौती भरा नारा लगाकर चुनाव मैदान में उतरता है किन्तु आर्थिक असमानता लगातार बढ़ती जाती है। सभी राजनैतिक दलों के नेता झोपड़ी वालों को लगातार यह समझाते रहते है कि उसकी झोपड़ी के बगल में बना हुआ महल ही उसकी झोपड़ी में सूर्य की किरणों को आने से रोक रहा है। तुम मेरी मदद करों तो अगले पांच वर्षो में इस भवन को गिराकर यह बाधा मैं दूर कर दूंगा। झोपड़ी वाला साफ देख रहा है कि उसकी झोपड़ी वैसी ही है जैसी पहले थी लेकिन आज भी राजनैतिक दल झोपड़ी वालों के मन में पड़ोसी के प्रति असंतोष की ज्वाला अधिक से अधिक जलाये रखने के लिये प्रयत्नशील है।

9. आर्थिक असमानता वृद्धि का प्रजातांत्रिक स्वरूप : प्रत्येक राजनैतिक दल यह पूरा–पूरा प्रयत्न करता है कि आर्थिक असमानता वृद्धि के उसके प्रयास पूरी तरह अप्रत्यक्ष भी हों और प्रजातांत्रिक भी। इसका तरीका यह है कि (क) जो वस्तुएं गरीब लोग अधिक और अमीर लोग कम उपयोग करते हैं उन वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर और प्रत्यक्ष सब्सीडी का प्रावधान करें (ख) जो वस्तुएं अमीर लोग ज्यादा और गरीब लोग कम उपयोग करें उनपर प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष सब्सीडी देना चाहिये। यदि भारत की पूरी आबादी को तीन भाग (क) गरीब (ख) मध्यम (ग) सम्पन्न वर्ग में बराबर–बराबर बांट दें और समीक्षा करें तो पायेंगे कि गरीब लोग 70 प्रतिशत साइकिलों का उपयोग करते हैं और अमीर लोग शून्य। जबकि रसोई गैस के मामले में उल्टा है अर्थात् गरीब लोग पांच प्रतिशत रसोई गैस उपयोग करते हैं और सम्पन्न लोग 70 प्रतिशत। भारतीय अर्थव्यवस्था में साइकिल पर प्रति साइकिल ढाई सौ रूपये तक कर लगता है और गैस के प्रति सिलेंडर पर डेढ़ सौ रूपये की सब्सीडी दी जाती है। रसोई गैस के मामले में साम्यवादी और पूंजीवादी दोनों ही आंदोलन करते हैं और साईकिल के मामले में दोनों ही चुप हो जाते हैं। इसी तरह सम्पन्न वर्ग की आय और व्यय में कुल कृत्रिम ऊर्जा का 70 प्रतिशत खर्च होता है और गरीब वर्ग में चार से पांच प्रतिशत। कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि का सभी राजनैतिक दल बढ़–चढ़कर विरोध करते हैं जबकि सभी प्रकार के अनाज, खाद्य तेल, दाल, वनोपज आदि पर टैक्स का कोई विरोध नहीं होता। यहां तक कि पशुचारा में काम आने वाली खली पर भी लगने वाले टैक्स का विरोध नहीं होता। यह बात पूरी तरह प्रमाणित है कि ग्रामीण उत्पादनों पर कर लगने और आवागमन को सस्ता होने से शहरी अर्थव्यवस्था मजबूत होती है और ग्रामीण कमजोर। सभी राजनैतिक दल यातायात को सस्ता करने की लगातार मांग करते हैं किन्तु ग्रामीण उत्पादनों पर कर लगने के विरूद्ध कोई आंदोलन नहीं होता। ग्रामीण व्यवस्था पूरी तरह तबाह हो गई है। शहरी अर्थव्यवस्था लगातार प्रगति कर रही है। किन्तु आज भी सभी राजनैतिक दल अपने उसी एजेन्डे पर लगातार काम करे हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था तभी सुदृढ़ होगी जब गांव स्वावलम्बी होंगे। गांव स्वावलम्बी तब होंगे जब प्रत्येक गांव को एक आर्थिक इकाई के रूप में विकसित किया जायेगा। हमारे गांव सदियों से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक आर्थिक इकाई थे। कई अर्थो में स्वावलंबी भी थे जो अब नहीं रहे।

10. प्राथमिकताओं के क्रम में सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा जन कल्याणकारी कार्यों का उच्च स्थान रखना : बिल्कुल सामान्य सी बात है कि सुरक्षा और न्याय शासन का प्रथम दायित्व होता है किन्तु भारत की सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था में सुरक्षा को बिल्कुल अंतिम प्राथमिकता में रखा गया है। भारत का केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के वार्षिक बजट को मिलाकर देखें तो उस बजट का सिर्फ एक–दो प्रतिशत ही पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता है। इस एक प्रतिशत बजट में से भी नब्बे प्रतिशत खर्च सुरक्षा और न्याय से हट कर छुआछूत निवारण, बालविवाह, बालश्रम, नशामुक्ति महिला सशक्तीकरण, आदिवासी हरिजन कानून, दहेज उन्मूलन आदि कम महत्वपूर्ण कार्यो पर खर्च हो जाता है। सुरक्षा और न्याय जैसे मुख्य मुद्दों पर तो कुल बजट का सौ रूपये में से दस नया पैसा ही खर्च होता है भारत के पुलिस और न्यायालय इन महत्वहीन या कम महत्व के कार्यों के दबाव से इतने Over Loaded हो जाते हैं कि –1. चोरी, डकैती, लूट 2. बलात्कार 3. मिलावट, कमतौल 4. जालसाजी 5. हिसा, आतक जैसे पांच प्रकार के गंभीर अपराध उनके नीचे दब जाते हैं। पुलिस और न्यायालय का बजट बढ़ाये बिना उन पर दायित्वों का बोझ बढ़ाते जाने से दोनों की कार्य क्षमता लगातार घटती गई है। जम्मू–कश्मीर सरकार पर्याप्त सुरक्षा नहीं दे सकी इसलिये वहां सेना भेजनी पड़ी। वहीं सरकार पुलिस पर दायित्व डाल रही है कि पचास से अधिक बाराती एक जगह भोजन करे तो पुलिस उन्हें रोके। प्रदेश सरकारें नक्सलवाद और उग्रवाद नहीं रोक पा रही हैं, उसे तम्बाकू रोकने का काम बहुत महत्वपूर्ण दिख रहा है। क्या तम्बाकू या बाराती नियंत्रण जेसे कार्य इतने अधिक महत्वपूर्ण हैं कि उन्हें सुरक्षा से भी अधिक महत्व दिया जाये? एक बैलगाड़ी के बैलों की क्षमता 40 क्विंटल वजन ढोने की है और 60 क्विंटल वजन लदा होने से गाड़ी Over Loaded है तब उस पर और वजन लादने का प्रयत्न घातक है चाहे उस पर वजन लादने वाला मालिक मूर्खता वश कर रहा हो अथवा चालाकी वश।

चरित्रपतन कितना दोषी

उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मुख्यमंत्री पद की शपथ के समय प्रदेश से डकैती उन्मूलन को अपनी पहली प्राथमिकता घोषित की थी। उस घोषणा के छः माह के अन्दर ही डाकुओं ने उनके बड़े भाई की हत्या कर दी, और श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को भी धमकाया। फल स्वरूप उन्होंने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। कुछ वर्ष बाद जब वही विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री बने तो वे गरीबी उन्मूलन भ्रष्टाचार नियंत्रण, अशिक्षा उन्मूलन आदि अनेक घोषणाएं करते रहे और सक्रीय भी खूब रहे किन्तु डकैती उन्मूलन या अपराध नियंत्रण उनकी घोषणाओं से गायब रहें। पिछले 60 वर्षों में भारत मे पंडित नेहरू से लेकर अटल बिहारी तथा अब मनमोहन सिंह तक जितने भी प्रधानमंत्री बने उनमें किसी ने भी अपराध नियंत्रण को सर्वोच्च प्राथमिकता घोषित नहीं किया। करते भी कैसे? अपराधियों से इन्हें भी डर लगता है और उनसे संबंध बनाकर रखना इनकी राजनैतिक मजबूरी भी है।

एक बार स्थिति यहां तक आई कि तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन ने भारत की समस्याओं से पल्ला झाड़ते हुए कहा कि भारत का न संविधान दोषी है न कानून। लोग कानूनों का पालन ही नहीं करते तो कानून और संविधान क्या करेगा? दुर्भाग्य की बात यह है कि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी और विपक्ष की नेता श्रीमती सोनिया गांधी ने भी राष्ट्रपति जी के कथन के प्रति पूरा–पूरा समर्थन व्यक्त किया। प्रश्न उठता है कि किसी पागलखाने का डाक्टर यह तक्र दे कि मरीज उसकी बात समझता ही नही, तो वह इलाज कैसे करे। उस डाक्टर का यह तर्क कदापि उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसे मरीजों के लिए ही तो उसकी नियुक्ति की गई है। यदि भारत में कोई पुलिस ओर न्यायालय है, कोई राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री है, कोई संविधान और कानून है तो वह मात्र उन लोगों के लिए है जो स्वतः समाज के कानूनों का ठीक–ठाक पालन नहीं करते। जो स्वयं ही आचरणवान हैं उनके लिये हमने किसी को नहीं बिठाया है। यदि आप आचरणहीनों से कानून का पालन नहीं करवा सकते तो असफलता स्वीकार करके गद्दी छोड़ क्यों नही देते ? गद्दी पर बैठते ही आपको सारा दोष समाज में दिखने लगता है और आपके कानून, आपका संविधान, आपकी व्यवस्था और आप स्वयं समाज को दोषी बताकर अपना पल्ला झाड़ने का प्रयत्न करने लग जाते है।

असफल कानूनों का चरित्रपतन पर कितना गहरा प्रभाव होता है इसका एक उदाहरण व्यवस्था परिवर्तन अभियान के प्रेरणास्रोत श्री बजरंगमुनि ने अपने जीवन की एक घटना से मुझे बताया कि वे अपने लड़के के साथ गढ़वा रोड स्टेशन पर दिल्ली की टिकट के लिये लाइन में खड़े थे। वे देख रहे थे कि कई लोग या तो धक्का देकर आगे टिकट ले लेते थे या कमरे के भीतर घुसकर। लडके ने कहा कि ट्रेन छूट जायेगी। अतः आप कहें तो मैं भी टिकट लेने का प्रयत्न करूं। मुनि जी ने लड़के को हां कर दिया। लड़का टिकट ले आया तो मुनि जी ने उससे पूछा कि उसके धक्का देने से एक बुढ़िया गिर गई जिसे चोट भी आई होगी। उसे उठाने की अपेक्षा उसका टिकट लेना कैसे उचित था तो लड़के ने कहा कि पिताजी धक्का तो कमजोर को ही दिया जाता है, मजबूत को नहीं। जो उससे मजबूत थे उनसे वह चुपचाप धक्के खाता रहा और जो कमजोर थे उन्हें धक्का देकर टिकट ले आया। मुनि जी ने फिर पूछा कि क्या यह उचित है? तो लड़के ने उत्तर दिया कि क्या यह उचित है कि धक्का देने वाले तो सब ट्रेन में सवार होकर चले जायें और हम धक्का खाकर मूर्ख सरीखे यहीं खड़े रह जावें। लड़के ने यह भी कहा कि आपके समकक्ष धक्का देने वाले तो पचास वर्षों में इतनी तरक्की कर गये और आप आज भी वहीं खड़े है। अब आपकी संतान वैसी भूल करने को तैयार नहीं। यदि सब धक्का देकर आगे बढ़ेंगे तो वह भी वैसा ही करने को तैयार है और यदि सब लाइन से आगे जायेंगे तो वह भी उनका अनुसरण करेगा। मुनि जी ने बताया कि वे स्वयं आज तक नहीं सोच पाये कि इसका सही उत्तर क्या है? हृदय लड़के के तर्कों को स्वीकारने को तैयार नहीं और मस्तिष्क लड़के के तर्क को मजबूत मानता हैं। मुनि जी के अनुसार आज भारत में ऐसे बुजुर्गों की कमी नहीं जो लड़के के आचरण को गलत कहते हैं किन्तु नई पीढ़ी ऐसे बुजुर्गों के आदर्श सुनने के लिए तैयार नहीं। मैं भी मानता हूं कि इस समस्या का समाधान न धक्का देकर आगे बढ़ने का प्रयास है न ही धक्का खाकर खड़े रहने का आत्मसन्तोष और न ही धक्का देने वालों से टकराव। इसका तो सिर्फ एक ही समाधान है 'व्यवस्था परिवर्तन' अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को न्याय और सुरक्षा की पूरी–पूरी गारन्टी हो ऐसी व्यवस्था समाज में स्थापित की जाये और ऐसे ही लोग शासन में जा सकें।

सारी दुनिया में एक सामान्य सा सिद्धांत है कि तानाशाही में कभी अव्यवस्था नहीं हो सकती। या तो सुव्यवस्था होगी या कुव्यवस्था। लोकतंत्र में न कभी सुव्यवस्था संभव है न ही कुव्यवस्था। लोकतंत्र में सदा अव्यवस्था ही होती है। वर्तमान समय में पूरी दुनिया लोकतंत्र और तानाशाही के बीच प्रयोग कर रही है। वस्तुस्थिति यह है कि अब तक दुनिया में लोक स्वराज्य का कभी प्रयोग ही नहीं हुआ, जिसका निश्चित परिणाम होता है सुव्यवस्था। लोकस्वराज प्रणाली में न अव्यवस्था का खतरा है न कुव्यवस्था का। हम मानते हैं कि तानाशाही की अपेक्षा लोकतंत्र सम्भवतः अधिक स्वीकृत प्रणाली है क्योंकि तानाशाही के बाद तो न लोकतंत्र सम्भव न लोक स्वराज किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि लोकतंत्र आदर्श प्रणाली है। सच्चाई यह है कि आदर्श शासन प्रणाली तो लोक स्वराज ही है जिसका परीक्षण किया जाना आज की परिस्थितियों के गर्भ मे छिपा है।

वर्तमान में तीन तरह के संविधान दुनिया में हैं – (1) पश्चिमी देशों में जहॉ व्यक्ति स्वातंत्र्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है और धर्म, समाज तथा राज्य को गौण (2) साम्यवाद जहां राज्य को सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न माना जाता है और धर्म समाज तथा व्यक्ति को गौण (3) इस्लामिक देश जहां धर्म को सबसे अधिक शक्ति प्राप्त है और समाज, राज्य तथा व्यक्ति गौण। भारत की यह परम्परा रही है कि यहां समाज को सर्वाधिक मजबूत माना जाता रहा और व्यक्ति, राज्य वा धर्म गौण। दुर्भाग्य से भारत का जो संविधान बना उसमें पश्चिम के व्यक्ति को भी महत्व दिया गया और साम्यवाद के राज्य को भी शक्तिशाली बनाया गया। इस संविधान में धर्म को भी शामिल किया गया किन्तु समाज को इस संविधान से पूरी तरह बाहर कर दिया गया।

सामाजिक व्यवस्था की पहली इकाई परिवार होती है और दूसरी गांव या क्षेत्र। उसके ऊपर जिला प्रदेश और राष्ट्र इसकी इकाईयां हो सकती है या इनके कुछ और नाम भी दिये जा सकते हैं किन्तु परिवार और गॉव तो निश्चित इकाईया हैं ही। भारतीय संविधान में न परिवार की कोई भूमिका है न गांव की। समाज की कोई मान्यता और भूमिका रखी ही नहीं गई हैं। इसके विपरीत संविधान में जाति, भाषा, लिंग आदि के आधार पर कुछ–कुछ बातें लिखकर सामाजिक विघटन के बीज अलग से बोने का काम किया गया है। भारतीय संविधान या तो समाज पर केन्द्रित होता या अन्य देशों के संविधान को आधार बनाकर लिखा जाता तब भी ऐसी अव्यवस्था नहीं होती जैसी अब है। किन्तु भारतीय गणतंत्र ने भारतीय परिवेश तो त्याग ही दिया, अन्य देशों की नकल करने में भी सब की बेतरतीब खिचड़ी बनाकर रख दी। यदि सम्पूर्ण विश्व के परिप्रेक्ष में भारतीय व्यवस्था की समीक्षा करें तो पायेंगे –

(1) राजनीति पूरी तरह चरित्रहीन हो गई है। राजनीति पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं रह गया है। ये लोग अब अपना असली चेहरा छिपाने के लिए 10 प्रकार के बहाने करने लगे है।

(2) राज्य पूरी तरह विफल हो गया है। न तो 11 समस्याएं इनसे सुलझ रही हैं न ही भविष्य में सुलझने की संभावना है।

(3) धर्माचार्य पूरी तरह समाज विमुख हो गये हैं। धर्माचार्यों को इस बात की चिन्ता ही नहीं कि समस्याओं का असली कारण राज्य है। इसके विपरीत धर्म के ठेकेदार तो सारी समस्याओं के लिए समाज को ही दोषी बताने में लगे रहते हैं।

(4) सम्पूर्ण विश्व शोषण में लगा हुआ है। दुनिया के किसी भी देश को भारत की अव्यवस्था की चिन्ता नहीं है। वे तो भारत को कर्ज या अनुदान देकर इसे आंतरिक समस्याओं में ही फॅसाकर रखना चाहते हैं।

(5) समाज मजबूर है। समझ में नही आ रहा है कि समाज क्या करे? स्पष्ट है कि भारत की सभी समस्याओं का कारण राजनीति का गिरता हुआ चरित्र और राजनैतिक उत्श्रृंखलता है। दो प्रतिशत तथाकथित राजनेता 98 प्रतिशत समाज को गुलाम बनाकर रखे हुए हैं। इन राजनेताओं के तिकड़मों के प्रभाव से समाज का चरित्र गिर रहा है, किन्तु सभी राजनेता भी चरित्र निर्माण को ही समस्याओं का समाधान बताते हैं और सभी धार्मिक, सामाजिक संस्थायें भी यही प्रचार करती रहती हैं। एक पुराना सिद्धान्त है कि धर्म व्यक्ति को कर्तव्य की प्रेरणा देता है, समाज अनुशासन में रखता है और राज्य शासन में रखता हैं। तीनों का चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। समाज का अनुशासन रहा ही नहीं, क्योंकि समाज–व्यवस्था को राज्य–व्यवस्था ने निगल लिया। धर्म का भी प्रभाव कम होता जा रहा है या धर्म भी संगठन का रूप लेता जा रहा है और राज्य अपराधियों पर शासन न करके समाज को ही शासित रखने में प्रयत्नशील है। समाज के समक्ष गम्भीर संकट है, सब लोग असहाय समाज को दोषी बताकर अपना दामन बचाने में लगे हुये हैं।

मैनेजर बना अभिरक्षक

संविधान की एक ही परिभाषा होती है कि संविधान राज्य के अधिकतम और समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करने वाला दस्तावेज होता है। संविधान सर्वोच्च होता है और व्यक्ति या राज्य कोई भी नियंत्रण से बाहर होकर उत्श्रृंखल होता है तो वह संविधान की विफलता मानी जाती है क्योंकि संविधान का ही सब पर नियंत्रण होता है। संविधान का मूल स्वरूप बनाना समाज शास्त्र का विषय है और उसे भाषा देना राजनीति शास्त्र का। संविधान का मूल ढांचा कभी भी राजनीति शास्त्र का विषय नहीं रहा है और न होना चाहिये। किन्तु हमसे भूल हुई कि हमने संविधान के मूल ढांचा निर्माण का काम भी राजनेताओं को सौंप दिया और भाषा का भी। राजनेताओं ने समाज को मतदान का अधिकार सौपकर अन्य सारे अधिकार अपने पास समेट लिये। राज्य को सदा ही समाज का मैनेजर होना चाहिये न कि अभिरक्षक। क्योंकि अभिरक्षक की नियुक्ति तो मालिक के नाबालिग, गंभीर रूप से बीमार या पागल होने की स्थिति में अल्पकाल के लिये इन तीनों कमजोरियों से मुक्त व्यक्तियों में से ही की जाती है। ऐसा कमी नही होता कि नाबालिग, बीमार या पागल का अभिरक्षक वैसी ही कमजोरियों वाले व्यक्ति को बना दिया जाये। अभिरक्षक को अंग्रेजी में Custodian कहते हैं। कस्टोडियन या अभिरक्षक को मैनेजर की अपेक्षा तीन विशेष अधिकार प्राप्त होते है–

1. मालिक पांच वर्ष की अवधि के बीच अभिरक्षक को नहीं बदल सकता। पांच वर्ष बाद भी मालिक उसे बदले तो वह उसके स्थान पर अभिरक्षक ही नियुक्त करेगा मैनेजर नहीं।

2. मालिक अभिरक्षक के अधिकार में कटौती नहीं कर सकता।

3. मालिक अभिरक्षक से सवाल नहीं कर सकता।

भारतीय संविधान ने संसद को तीनों अधिकार प्रदान कर दिये। हम जिसे चुनते हैं उसे पांच वर्ष के बीच में न हटा सकते हैं न बदल सकते हैं। हम संसद के अधिकारों की न व्याख्या कर सकते हैं न सीमा रेखा बना सकते है न ही कटौती कर सकते है। संसद हमारे परिवार के पारिवारिक मामलों में भी कानून बना सकती है किन्तु संसद के आन्तरिक मामलों में हम दखल नहीं दे सकते। संसद हमारे वेतनभत्ते तय कर सकती है किन्तु अपने वेतनभत्ते वह स्वयं ही तय करके हमसे वसूल कर सकती हैं। उनके भत्तों में हमारी कोई भूमिका संभव नहीं। हम यदि कोई ट्यूब लाइट तोड़ दे तो शासन हमसे वसूल कर सकता है। लेकिन संसद सदस्य संसद का सारा सामान तोड़–फोड़ दे तो हम कुछ भी नहीं कर सकते। वे चाहें तो स्वयं को मुक्त करके सारा नुकसान हम पर टैक्स के रूप मे डाल सकते है। संविधान निर्माताओं ने संसद को कस्टोडियन के अधिकार तो दिये ही साथ ही यह भी विशेषाधिकार दे दिया कि संसद जब तक घोषित न करें तब तक समाज नाबालिग और संसद अभिरक्षक की भूमिका में रहेगें, चाहे कितनी भी अवधि क्यों न बीत जाये। 60 वर्ष बीतने के बाद भी हम वैसे ही रहे क्योंकि हमें तो स्वयं को सक्षम घोषित करने का कोई अधिकार मिला ही नहीं और न ही कोई पृथक व्यवस्था बनी जो समय–समय पर स्थिति की समीक्षा करे। तीसरी अचरज की बात हमारे संविधान निर्माताओं ने यह भी की कि उन्होंने संसद को अभिरक्षक की इतनी व्यापक अधिकारों की भूमिका सौंपकर उनकी योग्यता का हमसे पृथक कोई मापदंड नहीं बनाया। जो करोड़ों लोग संविधान निर्माताओं की व्याख्या अनुसार इतनी भी योग्यता नहीं रखते कि परिवार या गांव की ठीक से व्यवस्था कर सके उन्हीं अयोग्यता वालो के बीच से चुना हुआ व्यक्ति रातों–रात सारे देश के लिये कानून बनाने के लिये योग्य घोषित हो जाता है। इससे भी अधिक कमाल की बात संविधान निर्माताओं ने यह लिख दी कि संसद बिना हमसे पूछे जब चाहे संविधान तक में संशोधन कर सकती है। अब आप सोच सकते हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने राज्य और समाज के अधिकार विभाजन में किस तरह सारे अधिकार एक पक्षीय और पक्षपातपूर्ण तरीके से राजनेताओं को सौपकर समाज के गुलाम बनाए रखने की सारी भूमिका संविधान में डाल दी।

हमारे समाज का सामाजिक चरित्र ही ऐसा रहा कि संस्कारों के कारण राजनीति को उत्श्रृंखल होने में इतने वर्ष लग गये अन्यथा संविधान में तो उन्हें रोकने का कोई आधार रखा ही नहीं गया। यह तो स्वतंत्रता के बाद के लोगों का उच्च चरित्र ही था कि पतन धीरे–धीरे हुआ। ये लोग स्वार्थी राजनेताओं तथा नासमझ समाज शास्त्रियों के प्रचार के शिकार हैं। यदि चरित्र पतन ही इसका दोषी है तो स्वतंत्रता के तत्काल बाद तो व्यवस्था में चरित्रवानों का वर्चस्व था। फिर क्यों व्यवस्था बिगड़ी और क्यों चरित्र गिरा? स्वाभाविक है कि चरित्र पतन के सारे अवसर भारतीय संविधान में मौजूद हैं किन्तु चरित्र ने उसकी गति को कम किया और अब ज्यों–ज्यों चरित्र की पूंजी कम हो रही है त्यों–त्यों इससे अव्यवस्था और चरित्र पतन तीव्र होता जा रहा है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि चरित्र निर्माण ही सारी समस्याओं का समाधान है तो इतनी भारी भरकम राज्य व्यवस्था की आवश्यकता ही क्या है? क्यों शासन इतना हस्तक्षेप करे ? क्यों नही शासन के हस्तक्षेप को सीमित करे तथा अधिक से अधिक शक्ति चरित्र निर्माण पर ही खर्च की जावे? ये तथाकथित सामाजिक धार्मिक संस्थाएं शराब बंदी, दहेज, बालविवाह, बालश्रम, तम्बाकू, परिवार के आन्तरिक विवाद जैसे सामाजिक विषयों पर तो राजनैतिक हस्तक्षेप की आवश्यकता बताती हैं किन्तु जब शासन या राज्य पर अंकुश की कोई बात उठती है तब ये लोग चरित्र निर्माण की रट लगाना शुरू कर देते हैं। ऐसे लोग आपको गली–गली में मिल जायेगें जो व्यवस्था परिवर्तन की अपेक्षा चरित्र निर्माण की वकालत करते रहते हैं। इन बेचारों को यह भी पता नहीं कि वे कितनी गलत बात कह रहे हैं। इन बेचारों को यह भी पता नहीं कि उनके इस कथन से राज्य और समाज के संबंधों पर कितना विपरीत प्रभाव होता है। कानून से चरित्र न कभी बना है न बनेगा। यह सच्चाई राजनेताओं को समझनी चाहिये। यदि वे यह न समझे तो समझानी पड़ेगी। अपराधियों से समाज की सुरक्षा राज्य ही कर सकता है समाज नहीं।

यह बात समाज को समझानी पड़ेगी। न्याय और सुरक्षा के अतिरिक्त सारे काम राज्य समाज को सौंप दे और अपनी सारी शक्ति समाज को न्याय और सुरक्षा की गारंटी तक सीमित कर ले, यही है व्यवस्था परिवर्तन। हमें यह करना ही होगा।

व्यवस्था परिवर्तन का स्वरूप

आज समाज में समाज शास्त्रियों तथा धर्माचार्यो का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो राज्य के गलत आदेशों के विरूद्ध आंदोलन को ही संघर्ष समझता है। आंदोलन करके हरियाणा में शराब बंद कराई गई और चार वर्षो में ही उसे मुख्यमंत्री ने जनहित में पुनः चालू कर दिया। शराब बंद की गई थी जनहित में और चालू भी की गई जनहित में। जनहित की परिभाषा यदि समाज न करके शासन करेगा तो वह अपनी सुविधा अनुसार जनहित की परिभाषा बनाता बदलता रहेगा। कुछ वर्ष पूर्व आयोडिन युक्त नमक अनिवार्य करने के विरूद्ध आंदोलन हुआ। अटल जी की सरकार ने जनहित में पाबंदी हटा ली और मनमोहन सिंह सरकार ने जनहित मे ही फिर पाबंदी लगा दी। छत्तीसगढ़ सरकार ने चीनी मिल के 25 किलामीटर क्षेत्र में गुड़ बनाने पर रोक लगा दी। आप करते रहिये आंदोलन। आप पूरी ताकत लगाकर एक आदेश निरस्त करवायेंगे और वे जनहित में पांच और प्रतिबंध लगा देंगे क्योंकि जनहित की परिभाषा भी तय करने का उन्हीं को अधिकार है और प्रतिबंध लगाने का भी। ऐसी निरर्थक कवायद का न काई अच्छा परिणाम अब तक निकला है न ही निकलेगा क्योंकि ऐसे आंदोलन अप्रत्यक्ष रूप से शासन के अधिकारों को स्वीकृति प्रदान करते हैं जो सारी समस्याओं की जड़ है। शासन के आदेशों की समीक्षा न करके अधिकारों की समीक्षा होती तो यह स्थिति आती ही नहीं किन्तु कोई भी धार्मिक, सामाजिक संस्था यह मानने को तैयार ही नहीं है कि उनका संघर्ष ही राज्य को असीम शक्ति प्रदान कर रहा है।

प्रबुद्ध लोगों ने समय–समय पर इसमें सुधार के प्रयत्न किये हैं। चुनाव सुधार के प्रयत्नों में संसद में अपराधियों के पहुंचने पर रोक, अच्छे आदमी के चुनने का प्रयास, मतदाता जागरण परिषद आदि न जाने कितने प्रयास व्यवस्था को सुधारने के लिये किये गए हैं। यह प्रयत्न वर्षों से चल रहे हैं किन्तु व्यवस्था है कि बिगड़ती जा रही है और प्रयत्न करने वाले मानने को तैयार नहीं। जब व्यवस्थापकों की नीतियां और नीयत दोनो ठीक हो तब व्यवस्था को चलने देना चाहिये जब व्यवस्थापकों की नीयत ठीक हो, नीतियां गलत तब नीतियों में परिवर्तन का प्रयत्न करना उचित होता है। किन्तु जब व्यवस्था करने वालों की नीतियां और नीयत दोनों ही गलत हों तब समर्थन या सुधार के प्रयत्न बिल्कुल बेकार होते हैं। ऐसे समय में पूरी व्यवस्था को बदलना ही एकमात्र मार्ग बचता है जिसका अर्थ होता है शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप को न्यूनतम, करना। सोये हुए को तो हल्ला करके जगाया जा सकता है किन्तु जगे हुए को जगाने के प्रयास का कोई अर्थ नहीं। स्वतंत्रता के बाद बीस–पचीस वर्ष तक तो नीतियां गलत थीं, नीयत पूरी तरह गलत नहीं हुई थी किन्तु अब नीतियां और नीयत दोनों ही पूरी तरह गलत हो गये हैं। ऐसे में सुधार के किसी प्रयत्न का न परिणाम निकल रहा है न ही निकलने की उम्मीद है। जो लोग ऐसे प्रयत्नों में संलग्न हैं वे स्वयं भी धोखा खा रहे हैं और वास्तविक संघर्ष की राह को भी भटका रहे हैं। किसी भी संविधान के गुण–दोषों की परीक्षा के लिये दस– बीस वर्ष ही पर्याप्त होते हैं। यदि दस–बीस वर्षों में परिणाम विपरीत निकलते दिखे तो सतर्क होकर विचार मंथन की आवश्यकता होती है। भारत में तो 60 वर्ष बीत गये। इन वर्षों में परिणाम तो विपरीत आते ही रहे बल्कि धीरे–धीरे राजनीति का अपराधीकरण भी होता चला गया। अब राजनीति को अधिकांश लोगों ने तो पारिवारिक या व्यक्तिगत व्यवसाय ही मान लिया है। कुछ गिने चुने लोग ही बचे हैं जिन्होंने इसे व्यवसाय नहीं बनाया। किन्तु ऐसे लोग भी पार्टी हित में भ्रष्टाचार करने या आंख मुंदने के लिये मजबूर हैं। राजनीति में अपराधियों की संख्या और शक्ति भी बढ़ती जा रही है। न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका, एक–दूसरे की पूरक या नियंत्रक नहीं रही अपितु लोकतंत्र के इन तीनों स्तंभों में निरन्तर प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही हैं। पूरी राजनीति कुछ परिवारों की पारिवारिक पृष्ठभूमि में सिमटती जा रही है। सन् सैतालिस में संसद में जितने परिवारों का प्रतिनिधित्व था अब तो उससे आधे ही परिवारों में पूरी संसद सिमट गई है। महिला आरक्षण संसद को और कम परिवारो मे सिमटाने का मार्ग प्रशस्त करेगा। कौन सा ऐसा लक्षण है जो अब भी हमें इस राजनैतिक व्यवस्था के प्रति आशा की कोई किरण दिखा रहा हैं? मार्ग कुछ दिखता नहीं। अब तो हमारे धैर्य का बांध टूटना ही चाहिये। वर्तमान व्यवस्था से संवैधानिक तरीके से दो–दो हाथ करना ही होगा। धीरे–धीरे श्रमजीवियों के धैर्य का बांध टूट रहा है। सत्ता संघर्ष में एक गुट के साथ जुड़कर उन्होंने नक्सलवाद के नाम पर बंदूक उठानी शुरू कर दी, ऐसी स्थिति में हमारे समक्ष वर्तमान व्यवस्था में दो ही विकल्प दिखते हैं या तो वर्तमान अव्यवस्था को बर्दास्त करना या नक्सलवादी तानाशाही को स्वीकार करना। दोनों ही स्थितियां घातक हैं। यदि हमने कोई अहिंसक संवैधानिक तरीके से व्यवस्था परिवर्तन में विलम्ब किया तो परिणाम बहुत भयंकर होंगे यह निश्चित है। अतः बिना कोई देर किये तत्काल व्यवस्था परिवर्तन के लिये एकजुट हो जाना शुरू करना चाहिये।

व्यवस्था परिवर्तन के मुख्य तीन चरण होने चाहिये – (1) राज्य और समाज के अधिकारों की पुर्नव्याख्या (2) ग्यारह समस्याओं का समाधान (3) चरित्र निर्माण के प्रयत्न। ये प्रयत्न इसी क्रम से करने होंगे। पहले क्रम में तो हमें इस एकसूत्रीय योजना पर आंदोलन करना चाहिये कि राज्य और समाज के अधिकारों का जो निर्धारण स्वतंत्रता के समय हुआ वह पूरी तरह गलत एकपक्षीय एवं अमान्य है। अब फिर से बैठकर राज्य और समाज के अधिकारों का पुनर्निर्धारण होना चाहिये अर्थात लोकतंत्र को लोक नियुक्त तंत्र के साथ ही लोक नियंत्रित तंत्र भी बना दिया जाये। इसे ही गांधी जी ने लोक स्वराज्य और जय प्रकाश जी ने सहभागी लोकतंत्र का नाम दिया था। दुर्भाग्य से न गांधी की बात सुनी गई न जयप्रकाश की। हम 60 वर्षों तक नेहरू जी से प्रारम्भ सुराज्य के नारे से छले गये और अब भी उसी सुराज्य से छले जा रहे हैं। अब तो पहले चरण के आंदोलन की तत्काल रूपरेखा बननी चाहिए। दूसरा चरण तब शुरू होगा जब पहला चरण सफलता की ओर जा रहा होगा। जब तक राजनीति पर समाज का अंकुश नहीं होगा तब तक 11 समस्याओं के समाधान की शुरूआत ही संभव नहीं है। इसलिए दूसरे चरण पर अभी विचार–मंथन तक हो सकता है। किन्तु तीसरे चरण का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, जब तक पहला चरण पूरा और दूसरा चरण

शुरू न हो। फिर भी जो लोग पहले और दूसरे चरण पर काम करने में सक्षम न हों वे यदि तीसरे चरण पर काम करें तो अवश्य करें। किन्तु किसी भी सक्षम व्यक्ति को पहला चरण पूरा हुये बिना किसी अन्य चरण से समाधान की कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

इस प्रयत्न में अनेक बाधाएं आयेंगी। कोई भी राजनैतिक दल प्रत्यक्ष विरोध करने की हिम्मत नहीं करेगा किन्तु भारत में अनेक ऐसे व्यक्ति या संगठन हैं जो वर्तमान व्यवस्था से किसी न किसी रूप में पुरस्कृत या लाभान्वित हो रहे हैं, वही लोग इस अभियान का विरोध करने की जगह इसे गुमराह करने का प्रयास करेंगे। ये लोग व्यवस्था में सुधार के आंदोलन खड़ा करेंगे या ये लोग चरित्र निर्माण की वकालत करेंगे। कुछ लोग तो इतनी तक धृष्टता कर सकते हैं कि वे अपने अभियान के साथ गांधी, विवेकानंद, राम कृष्ण आदि महापुरूषों का नाम या लोक स्वराज्य, व्यवस्था परिवर्तन आदि शब्द तक जोड़ सकते हैं। किन्तु हमें ऐसे तत्वों से उलझने से भी बचना होगा और गुमराह होने से भी। बिल्कुल सतर्कता से आंदोलन प्रारम्भ करना होगा। भारत का आम नागरिक पूरी तरह निराश हैं। उनमें आशा की कोई किरण नहीं दिखती। ऐसे बेबस लोगों में आशा का संचार करना होगा। लोक नियंत्रित तंत्र को जन आंदोलन बनाने के लिए विचार करने वाले प्रबुद्ध लोग सम्पूर्ण भारत मे सक्रिय हैं, उन्हें इसके लिए आम जन का विश्वास जीतना होगा। उन्हें विश्वास दिलाना होगा कि निराशा की कोई बात नहीं। एक बार आंदोलन की वृहद् योजना बनाकर कार्य शुरू कर दिया जाय तो सफलता प्राप्त करने में देर नहीं लगेगी। संतोष की बात है कि इस महान यज्ञ में दी गई आहुति व्यर्थ नहीं जायेगी उसके सुखद परिणाम होंगे। नूतन समाज का निर्माण होगा जिसकी पहल भारत करेगा।

लेखक की अपील

आज चर्चा के तीन बिन्दु हैं

वर्तमान स्थिति

समाधान की खोज

समाधान।

वर्तमान स्थिति की चर्चा करने वालों का कोई अभाव नहीं है। आपको गली–गली में विश्लेषण करने वाले मिल जायेंगे किन्तु समाधान किसी के पास नहीं दिखता। मेरे प्रेरणा स्रोत श्री बजरंग मुनि ने समस्या का समाधान बता दिया है। अब हम सबको मिलकर यह कार्य करना है। काम बहुत कठिन है किन्तु कोई अन्य मार्ग नहीं है।

यह मार्ग सम्पूर्ण विश्व को नई दिशा दे सकता है किन्तु भारत के लिए तो इसकी तत्काल आवश्यकता है इसलिए हम सबने मिलकर यह चुनौती स्वीकार की है। चुनौती बहुत बड़ी है किन्तु मार्ग एक ही है। अब इस नए स्वतंत्रता संघर्ष में आपको अपनी भूमिका तलाशनी है कि आप इस संघर्ष में नल–नील की भूमिका में आते हैं या हनुमान की या गिलहरी की।

इसी सम्भावना के साथ आपको यह पुस्तक समर्पित है कि आप पढ़ने के बाद पत्र लिखें या फोन करें तो आपको अधिक जानकारी हेतु अन्य साहित्य भेजा जायेगा।

लेखक एवं निवेदक

अशोक कुमार गदिया

बी.काम., एफ.सी.ए.

सम्पक्र का पता :

मेवाड़ इन्स्टीट्यूट

सैक्टर–4सी,वसुन्धरा,

गाजियाबाद–201012 (उ.प्र.)

फोन : 0120–2883970

मो0:9891029293

'' सब सुधरेगा, तीन सुधारे।

नेता कर, कानून हमारे।।''

.....लोक स्वराज्य आंदोलन

'' कृत्रिम ऊर्जा सस्ती हो,

यह बहुत बड़ा षड़यंत्र है।

श्रम का शोषण करने का,

यह पूंजीवादी मंत्र है।।''

..... श्रम शोषण मुक्ति अभियान

सुरक्षा और न्याय शासन का प्रथम दायित्व होता है

तथा अन्य जन कल्याणकारी कार्य अतिरिक्त कर्तव्य।

शासन द्वारा दायित्व की उपेक्षा करके अन्य कार्यो में

सक्रियता सबसे बड़ा संकट है।

..... व्यवस्था परिवर्तन अभियान

वर्तमान लोक नियुक्त तंत्र में

न कोई लोक है।

न कोई तंत्र है।

यह आम आदमी के खिलाफ।

विशेष आदमी का खुला षड़यंत्र है।

आइये हम–आप मिलकर

लोक नियंत्रित तंत्र की ओर चलें।

..... व्यवस्था परिवर्तन अभियान

धर्म व्यवस्था और राज्य व्यवस्था ने समाज व्यवस्था को लगातार कमजोर किया हैं। अब आवश्यकता है कि धर्म और राज्य व्यवस्था पर समाज व्यवस्था को निर्णायक वरीयता प्राप्त हो। आइये हम आप सब मिलकर इस प्रयत्न को साकार करें।

..... ज्ञानयज्ञ परिवार .....